सामाजिक विज्ञान शिक्षण

अवधारणा और जीवन के बीच सेतु

अंजना त्रिवेदी

कक्षा की योजना के बाद बच्चों के साथ संवाद के अनुसार उसमें बदलाव और तैयारी करना और शिक्षण के उद्देश्य को बार-बार टटोलना मननशील शिक्षण की पहचान है। एक मननशील शिक्षक अपने कक्षा शिक्षण को समालोचनात्मक दृष्टि से देखता है और उसपर चिन्तन करता है। उसकी सीमाओं को पहचानता है। प्रस्तुत आलेख इसी चिन्तन पर आधारित है। टीचर एजुकेटर के रूप में लेखिका ने स्कूल में एक शिक्षिका को अध्यापन कार्य के दौरान मदद के लिए बच्चों को धर्म-निरपेक्षता की अवधारणा पढ़ाने की कोशिश की और चार दिन की इस पूरी प्रक्रिया का विश्लेषण किया है। सं.

मध्यप्रदेश में भोपाल ज़िले के सरकारी स्कूलों के साथ सघन काम करने के दौरान टीचर लर्निंग सेंटर में शैक्षिक विमर्श, कार्यशालाओं और विभिन्न प्रशिक्षणों के माध्यम से बने सम्पर्कों में एक शिक्षिका लगातार अपनी सामाजिक विज्ञान कक्षाओं से जुड़ी समस्याओं का ज़िक्र करती रही हैं। काफ़ी लम्बे समय से उनका आग्रह था कि, "आप जो कहती हैं कि संविधान में उल्लिखित मूल्यों को रुचिकर तरीक़े से और जीवन अनुभवों के साथ जोड़कर पढ़ाया जाना चाहिए तो एक बार आप आकर उन बच्चों को पढ़ाकर बताएँ। मुझे इससे मदद मिलेगी"। शिक्षिका ने यह भी कहा कि, "मेरे स्कूल के बच्चों में न तो मैं रुचि पैदा कर पा रही हूँ और न बच्चे मुझे सहयोग कर पा रहे हैं। आप आकर एक बार क्लास लें, ख़ासतौर से धर्म-निरपेक्षता को मैं किस प्रकार समझाऊँ, ये आप एक बार अवश्य बताएँ"।

मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र द्वारा प्रकाशित आठवीं की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में धर्म-निरपेक्षता की परिभाषा कुछ यूँ दी गई है– 'देश के सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता है। किसी धर्म के लिए राज्य पक्षपातपूर्ण कार्य नहीं करेगा और न ही हस्तक्षेप करेगा। सभी धर्म के नागरिकों को बिना भेदभाव के शासकीय सेवाओं में अवसर प्राप्त होंगे'। शिक्षिका का सवाल था कि दो लाइन की परिभाषा में दी गई धर्म-निरपेक्षता को आप एक क्लास में रुचिकर तरीक़े से कैसे समझा सकते हैं।

एनसीएफ़ 2005, इस दुविधा से उबरने के लिए हमें कुछ इशारे ज़रूर करता है। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* सामाजिक विज्ञान के जीवन्त शिक्षण की बात कहती है। इसमें दुकान, महिला, व्यापार, लेन-देन, हर नागरिक के लिए सुरक्षित और बेहतर जीवन की बात शामिल है, जिसमें विद्यार्थी और शिक्षक दोनों ही सजीव अभिकर्ता के रूप में सम्मिलित होंगे और वास्तविक जीवन अनुभवों से ही सीखने-सिखाने का व्यवहार होगा। सामाजिक विज्ञान के सन्दर्भ में और भी बहुत-सी बातें इन दस्तावेज़ों में कही गई हैं, लेकिन उनकी चर्चा बाद में की जा सकती है।

भोपाल से क़रीब 25 किलोमीटर दूर एक गाँव के उस माध्यमिक स्कूल में बच्चों से सामान्य बातचीत के साथ कक्षा शुरू हुई। यह स्कूल ग्रामीण इलाक़े में आता है, जहाँ आदिवासी और

मुस्लिम समुदाय के बच्चे हैं। ज़्यादातर बच्चों के पालक मज़दूरी की तलाश में आकर यहीं बस गए हैं। माध्यमिक स्कूल (कक्षा 6, 7 और 8) में कुल 109 बच्चे हैं। उस रोज़ कक्षा 7 और 8 के कुल 42 बच्चे मौजूद थे। इसमें एक-तिहाई संख्या लड़कियों की थी।

मैंने सीधे ही बच्चों से पूछा कि धर्म-निरपेक्षता क्या है? बच्चे इसका कोई भी उत्तर नहीं दे पाए क्योंकि पहले पढ़ा दिए गए 'हमारा संविधान' अध्याय के तहत धर्म-निरपेक्षता को बच्चे समझे ही नहीं थे। संविधान में धर्म-निरपेक्षता का यह मूल्य क्यों रखा गया है, इसका कारण बच्चों को स्पष्ट नहीं था। हालाँकि यह संविधान वाला अध्याय पढ़ा दिया था। संविधान के इस अध्याय में कई सारी परतें हैं जिन्हें खोले बग़ैर बात समझ में नहीं आती। 'हम भारत के लोग, लोकतांत्रिक गणराज्य, सरकार, बहुमत' जैसे मसलों को एक-एक कर खोलना, उनपर बच्चों के अनुभव और समझ से बात करना और फिर सैद्धान्तिक बातों को व्यावहारिक बातों व घटनाओं से जोड़कर दिखा पाना इसके लिए ज़रूरी होगा। मूर्तता से अमूर्तता और फिर अमूर्तता से मूर्तता की ओर जाने की ज़रूरत होगी। और इस सब काम में कम-से-कम 8 से 10 पीरियड का समय तो चाहिए ही। साथ-ही-साथ इसका मूल्यांकन भी करते चलना होगा कि बच्चे कितना और क्या-क्या समझ पाए, किन उदाहरणों और बातों से समझ पाए और वे इन बातों को आपस में कैसे जोड़कर देख पा रहे हैं।

मसला यह रहा कि यदि बच्चों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से नहीं जोड़ा जाए तो धर्म-निरपेक्षता के इस मूल्य को समझना किस प्रकार सम्भव हो पाएगा। मुझे भी बहुत चुनौतीपूर्ण लग रहा था कि यदि बच्चों से इसके आगे-पीछे की कभी कोई बात ही नहीं की जाए तो वह किसी एक बिन्दु पर ठहरकर कैसे समझ पाएँगे।

शिक्षिका के आग्रह पर अचानक शुरू की गई इस क्लास में जो विषय मुझे पहले पहल सरल लग रहा था उससे जूझते हुए चार दिन हर रोज़ एक-एक घण्टे का समय लगाया। पर कई बातें अधूरी छूट गईं। कई बातों का कोई सन्दर्भ ही नहीं बन पाया। कोई दावा भी नहीं कि बच्चे क्या और कितना सीख या समझ पाए। इतना समझ आया कि किताब और अवधारणाओं की परिभाषा के साथ ही बच्चों के जीवन अनुभव और आसपास इन अवधारणाओं के जीवन्त उदाहरण और चिह्न व प्रतीकों के सहारे ही बच्चों में आप इन बातों की समझ बना सकते हैं। यह लम्बे समय और तैयारी की माँग करता है। अपने चार दिन के अनुभव को मैं यहाँ इस आलेख में साझा कर रही हूँ। यह बहुत ही प्रारम्भिक और परिचयात्मक है। आगे के सुनियोजित काम को अगली कड़ियों के रूप में प्रकाशित किया जा सकेगा।

चूँकि मेरा उन बच्चों व उनकी दुनिया से ख़ास परिचय नहीं था, न उनसे दोस्ती या विश्वास का रिश्ता था तो मैंने कुछ अनौपचारिक बातचीत से अपनी बात शुरू की। मैंने बच्चों से ख़ूब सारी बातें पूछीं, जैसे कि आप कहाँ रहते हैं? घर और स्कूल के बीच कितनी दूरी है? घर में कौन-कौन है? आप बड़े होकर क्या बनना चाहते हैं? बच्चे ख़ूब अच्छे-से बात कर रहे थे। वह भोपाल शहर भी आए हैं, इस बात को वे उत्साह से बता रहे थे। बच्चों को अपने बारे में बताने में मज़ा भी आ रहा था और मुझे बच्चों को जानने-समझने का मौक़ा मिल रहा था। ये सब बातें कोई 15-20 मिनट तक चलीं। उसके बाद मैंने कहा, "चलो, हम सब समूह में काम करते हैं, इसमें सब अपनी बात रख सकते हैं और इसमें सबको बोलना है।"

लड़के / लड़कियों के पाँच समूह बनाए गए। सभी समूहों को दो सवाल दिए गए जिनके उत्तर उन्हें उनके समूह में बात कर तय करने थे। पहला प्रश्न था, संविधान क्या है? और दूसरा, संविधान की प्रस्तावना में किन मुख्य बातों का उल्लेख किया गया है? (उल्लेखनीय है कि मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र की पाठ्यपुस्तक में संविधान की प्रस्तावना और उसकी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है)। समूह में बातें शुरू हुईं। मैंने देखा

सभी बच्चे अपने समूह में दो बातें मुख्य रूप से कर रहे थे। पहली बात तो यह कि संविधान नियम और क़ानून का पुलिन्दा है (सभी का एक जैसा उत्तर था)। दूसरा, वे 'हम भारत के लोग', 'गणराज्य' और 'लोकतंत्र' जैसे शब्द ही बोल रहे थे, इनके अर्थ खोलना उनके लिए मुश्किल लग रहा था।

समूह में जो बच्चे नहीं बोल रहे थे उनसे पूछा गया कि क्या वे इनसे कुछ अलग बात रखना चाहते हैं? या फिर जो बातें आ चुकी हैं आप भी वही कहना चाहते हैं। बच्चे बोले– हाँ। मैंने कहा कि आपको कोई और बात सूझ रही हो या लगती हो तो आप ज़रूर बोलें, क्योंकि समूह में सबकी बातें मिलकर ही समूह की बात बनती है। कुछ बातें मैंने बढ़ाने की कोशिश की, उन्हें उनकी शिक्षिका द्वारा ली गई क्लास और बताई गई बातें याद दिलाईं, लेकिन बात आगे नहीं बढ़ी। एक तरह से पूरे समूह में दो-तीन बातों से ज़्यादा कोई बात निकलकर नहीं आ रही थी।

इस सम्बन्धित चर्चा में मैंने सभी बच्चों को *भारत एक खोज* के 42वें एपिसोड की एक क्लिपिंग दिखाई, जिसमें बच्चे उस समय के मुद्दों और स्थिति को देख और समझ सके। उसके बाद *संविधान* का चौथा एपिसोड दिखाया, जिसमें मौलिक अधिकारों पर चर्चा हो रही थी।

यह बात करके मैं बच्चों के पूर्व अनुभव को उभारना भी चाह रही थी और कक्षा-कक्ष का वातावरण भी सहज बनाना चाह रही थी। मेरी कोशिश थी कि शिक्षक और बच्चों के बीच भी एक साझेदारी बने। बच्चों के जीवन में वापस लौटना हो सके और उससे उनको जोड़ना भी हो पाए, ताकि इसको आधार बनाकर जीवन अनुभवों और वास्तविक प्रसंगों के मार्फ़त अवधारणा तक पहुँचा जा सके।

अब मैं चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए किसी तरह से उत्साहित और प्रेरित करने वाली बात छेड़ना चाह रही थी। एनसीईआरटी की कक्षा 8

चित्र : हीरा धुर्वे

की *सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन* किताब के अध्याय 2 में उल्लिखित एक काल्पनिक परिस्थिति मैंने बच्चों के सामने रखी कि– 'किसी व्यक्ति का धर्म कहता है कि पैदा होते से बच्चे को मार देना चाहिए। उसमें सरकार की क्या भूमिका होगी?' किताब के ही अनुसार मैंने भी उनसे कहा कि इसपर समूह में चर्चा कर लिखो या कक्षा-कक्ष में रोल-प्ले करो। मुझे उम्मीद थी कि इसमें ख़ूब सारे बिन्दु निकल पाएँगे जैसे– स्थानीय स्वशासन, लिंग भेदभाव, लोगों की मान्यताएँ, धर्म का हस्तक्षेप वग़ैरह।

दरअसल मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र की पाठ्यपुस्तक में जहाँ 'धर्म-निरपेक्षता' का ज़िक्र है, वहाँ ऐसा कोई जीवन्त उदाहरण मुझे नहीं दिखा जिसे चर्चा के लिए लिया जाता। इसलिए एनसीईआरटी की किताब से यह उदाहरण चुना। जल्दी ही मुझे एहसास हो गया कि इससे बहुत सारी परतें तो खुलती जा रही हैं, पर कई सारी पूर्ववर्ती अवधारणाओं पर काम किए जाने की भी ज़रूरत है। यह भी समझ में आया कि एनसीईआरटी की किताब में इस उदाहरण से पहले अवधारणाओं का एक क्रमिक विकास है, जबकि मैंने पहले की तैयारी कराए बग़ैर एक ऐसा अंश उठा लिया था जिसपर चर्चा

तो फिर भी हो सकती थी, पर अवधारणाओं की आधारभूत समझ से पहले यह सब किसी काम का नहीं था। शिक्षिका का एक ही कक्षा में धर्म-निरपेक्षता को जल्दी से समझा देने का आग्रह स्वीकार कर उसपर बिना तैयारी बातचीत शुरू करना भी मेरी जल्दबाज़ी और नासमझी ही थी।

मेरे लिए यह काम देखने-समझने का पहला और नया मौक़ा था। हालाँकि बच्चे समूह में जो बात कर रहे थे वह बहुत ही रुचिकर थी।

एक बच्चे ने कहा– "कोई धर्म नहीं कहता है कि पैदा होते से बच्चे को मारें।"

दूसरी बच्ची ने कहा– "लड़कियों को तो मार देते हैं।"

तीसरे बच्चे ने उसकी ओर देखते हुए कहा– "तुमने देखा है क्या?"

पहले बच्चे ने कहा– "इसने पेपर में पढ़ा होगा। पेपर में तो सब ख़बर ग़लत आती हैं।"

दूसरी बच्ची बोली– "नहीं, मेरी माँ एक जगह मालिश करने जाती है तो उसकी सास कह रही थी कि लड़की थी इसलिए उसे पैदा ही नहीं होने दिया।"

"लड़की भी तो बच्चा है न।" वह बोलते हुए थोड़ी संशय में थी (लड़की को बच्चा माने या नहीं)।

एक बच्चे ने सवाल फिर से पढ़ा और कहा– "पैदा होने के बाद थोड़ी मारा वह तो पहले ही मार दिया न।"

इन चार-छः कथनों ने सामाजिक विज्ञान शिक्षण के कई सारे दरवाज़े खोल दिए। क्या धर्म बच्चियों को मारने को कह सकता है? जब कोई कहे कि वास्तव में बच्चियों को लोग मार डालते हैं, तो उसका आधार क्या हो सकता है? क्या कही सुनी बातें, अख़बार की बातें सही हो सकती हैं? क्या इस सन्दर्भ में एक मालिश करने वाली महिला की जानकारी सही हो सकती है? क्या 'बच्चा' शब्द इस सन्दर्भ में लड़कियों के लिए उपयोग किया जा सकता है, और यह कि क्या यह सब दिए गए सवाल के लिए प्रासंगिक है... सामाजिक विज्ञान के इन बुनियादी सवालों से जूझना तब सम्भव हुआ जब हमने एक जीवन्त प्रश्न पर सामूहिक विचार शुरू किया।

चित्र : हीरा धुर्वे

बच्चों से बात करते हुए मैंने कहा कि आप यह जो बता रहे हो वह धर्म का स्वभाव बताता है। यह लोगों के विश्वास और परम्परा पर टिकी व्यवस्था है। सबके धर्म अलग-अलग होते हैं। सभी अपने-अपने तरीक़ों से अपने विश्वास को मानते हैं और अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। राज्य इस बारे में कुछ नहीं बोलता है। हाँ, लेकिन धर्म के नाम पर किए जाने वाले अपराध पर राज्य कार्रवाई करता है। जब भी कोई ऐसा काम होता है जो मानवता और मनुष्य के अधिकार के ख़िलाफ़ है, तो राज्य वहाँ हस्तक्षेप ज़रूर करता है, उसे करना ही चाहिए। इसीलिए पेट में गर्भ को मारने से जुड़े कई क़ानून बनाए गए हैं। संविधान में सबको जीवन का अधिकार मिला हुआ है। चाहे गर्भ

हो या शिशु, कोई धर्म या कोई मान्यता उसका जीवन नहीं छीन सकते। इस तरह की किसी भी मान्यता और आचरण को राज्य और उसका क़ानून मंज़ूरी नहीं देता, बल्कि उसे रोकता है और ऐसा करने वाले के लिए सज़ा का प्रावधान है। राज्य को इस बात से मतलब नहीं है कि ऐसा आचरण करने वाले का धर्म क्या है, उसकी मान्यता क्या है, वह सिर्फ़ यह देखता है कि यह नियम के विरुद्ध है, संविधान के विरुद्ध है, मानवता के विरुद्ध है। और इसीलिए वह हस्तक्षेप करता है।

इससे आगे निकलकर मैंने पूछा कि धर्म क्या होता है? आप लोग जानते हैं क्या? कुछ बच्चों ने कहा कि हाँ, जहाँ मन्दिर होता है, कुछ ने कहा कि जहाँ पुजारी होता है। मैंने पूछा कि आप कौन-से भगवान को मानते हो? तो बच्चों ने कहा कि हमारे घर में पूजा नहीं होती है। हम तो कभी भी किसी भी मन्दिर में जहाँ प्रसाद मिलता है वहाँ चले जाते हैं और प्रसाद खाकर आ जाते हैं। कभी-कभी हम खाना भी खाकर आते हैं। एक बच्ची ने कहा कि हम जब यहाँ नए-नए आए थे, तो एक आंटी कार में बैठाकर अपने घर खाना खिलाने ले गई थीं। हमको नहीं मालूम तब क्या था?

बच्चों ने कहा कि एक बार हम मस्जिद में खाना खाने गए थे, हम सब स्कूल से ही चले गए थे। दूसरा बच्चा बोला कि एक बार सरदारों की जगह भी तो खाना खाने गए थे।

जब हम अवधारणाओं को खोलने का प्रयास करते हैं तो पाते हैं कि बच्चे उन्हें कितने विविध तरीक़ों से पकड़ने व विमर्श करने का प्रयास करते हैं। यहाँ धर्म का आशय मन्दिर, पुजारी, प्रसाद खाना, कन्या पूजन आदि अनुभवों को समेटकर, समझने का प्रयास हो रहा था। ये वे ठोस अनुभव थे जो बच्चों को धर्म से जोड़ रहे थे, और धर्म-निरपेक्षता से भी। आख़िर प्रसाद कहीं का भी हो– मन्दिर का या मस्जिद का या गुरुद्वारे का– बच्चों के लिए कोई फ़र्क़ नहीं था। मगर पाठ्यपुस्तक की अवधारणा को समझाने के लिए मुझे उन्हें और कहीं ले जाना था।

हालाँकि यहीं पर मुझे बच्चों से यह बात करनी चाहिए थी कि धर्म क्या है? हमारे जीवन में वह कैसा और किस प्रकार से जुड़ा है? हम उसके आधार पर कैसे व्यवहार करते हैं? उसके चिह्न और प्रतीक हमको कहाँ दिखते हैं? उसकी क्या बाध्यताएँ हैं? और, व्यक्तिगत जीवन, सामाजिक जीवन एवं नागरिक जीवन में उसकी क्या अपेक्षाएँ व सीमाएँ हमें दिखती हैं? मैं यहाँ पर चूक गई और धर्म-निरपेक्षता से सीधे सरकार पर छलाँग लगा दी।

मैं मन-ही-मन सोच रही थी कि ये सब जो बच्चे कर रहे हैं वह सब धार्मिक स्वतंत्रता (व्यक्तिगत स्वतंत्रता) की ही श्रेणी में है। जहाँ वे किसी भी धर्म को नहीं जानते, किसी धर्म का बन्धन नहीं है या किसी धर्म से बैर नहीं है। पर अभी भी राज्य की धर्म-निरपेक्षता को समझना थोड़ा कठिन लग रहा था, क्योंकि राज्य की धर्म-निरपेक्षता को समझने के लिए राज्य सरकार को समझना ज़रूरी है।

मैंने पूछा– "अच्छा बताओ कि सरकार कौन है?"

एक बच्चा बोला– "सफ़ेद कपड़े पहनकर वोट माँगने आते हैं वही हैं।"

मैंने कहा– "तुम्हारे यहाँ का कोई नेता होगा न।"

बच्चे बोले– "एक नहीं है, कभी कोई आता है तो कभी कोई। आते रहते हैं। मोहल्ले के लोग कह रहे थे कि ये लोग काम के नहीं हैं।" (शायद कभी पार्षद, विधायक या सांसद आते होंगे)।

अपनी बातचीत को अब किस दिशा में लेकर जाऊँ, मेरे लिए ये बड़ी दुविधा हो गई। राज्य की धर्म-निरपेक्षता समझाने के लिए सरकार की अवधारणा समझाना ज़रूरी लगा। सरकार क्या है? कैसे बनती है? लोकतंत्र क्या है? इनके बाद

ही तो धर्म-निरपेक्षता की बारी आती है। मुझे इन सफ़ेदपोश नेताओं से शुरू करना होगा। चुनाव से सरकार का बनना समझना होगा। चुनाव प्रक्रिया और उसमें बहुमत दल के नेता को समझाया तो धर्म-निरपेक्षता तो अभी रह ही जाएगी। एक दिन के घण्टेभर में इतनी बातचीत करके मैं लौट रही थी। मेरे सामने संकट ये था कि कल सरकार पर चर्चा करूँ या संवैधानिक मूल्यों पर? चर्चा कैसे करूँ? बच्चे विविधता को तो भली भाँति समझ रहे हैं, लेकिन उसे व्यवस्थित कर अवधारणा की शक्ल में ढालना ज़रूरी था।

दूसरे दिन, मैंने चॉक और बोर्ड की मदद से सरकार को समझाने का प्रयास किया। एकलव्य की सामाजिक विज्ञान की पुस्तक से मैंने राज्य

चित्र : हीरा धुर्वे

की विधान सभा और राज्य के मंत्री मंडल के बारे में बताया (इसे पहले नक़्शे में राज्यों के माध्यम से बताया गया)। मैंने बताया कि जिसको हम चुनकर शासन चलाने के लिए भेजते हैं, जो हम सबका ख़्याल रखेगा, वह सरकार है। किन्तु बच्चों के चेहरों से समझ में आ रहा था कि इस अमूर्त सरकार को वह नहीं समझ पा रहे थे। मैंने सोचा कि स्कूल में कक्षा मॉनिटर और बाल कैबिनेट तो होगी ही, उसका उदाहरण देकर बताती हूँ। पर उस स्कूल में ऐसा कुछ भी नहीं था। मैंने शिक्षिका से पूछा कि यहाँ आपने कक्षा मॉनिटर और बाल कैबिनेट बनवाई है क्या? शिक्षिका ने कहा कि नहीं बनाई। मैंने कहा कि बच्चे इससे ही भारत की अपनी नागरिकता को समझ पाते। शिक्षिका ने ज़ोर देकर कहा कि ये सब तो मैंने पढ़ा दिया।

मैंने शिक्षिका को समझाने का प्रयास किया कि किसी एक मुद्दे के लिए उससे जुड़ी कई अवधारणाओं को समझाना आवश्यक होता है। पर उन्हें लग रहा था कि यह सब बच्चों को इतना विस्तार से बताकर मैं खामखा मुद्दे को खींच रही हूँ।

मुझे समझ में आ रहा था कि धर्म-निरपेक्षता से पहले सरकार, स्थानीय सरकार, ज़िला सरकार और राज्य सरकार के साथ केन्द्र सरकार के कार्यों को समझना आवश्यक है। उसके बाद, सरकार का चुनाव किस प्रकार से होता है और वह जनता के लिए किस प्रकार से कार्य करती है, इस सबके बाद संवैधानिक मूल्यों को सरकार किस प्रकार से लागू करती है, यह सब बच्चों को समझाना होगा। शिक्षिका ने आग्रहपूर्वक कहा कि आप तो धर्म-निरपेक्षता जल्दी से समझा दीजिए। पर मेरे लिए बिना सीढ़ी के ऊपर चढ़ना कठिन था।

तीसरे दिन मैंने बच्चों से पूछा कि आज किसपर बातचीत करनी चाहिए? बच्चों ने कहा कि मैम, आपने कल कहा था कि रोल-प्ले करवाएँगी तो आज हम तो वही करेंगे। सरकार का चुनाव कैसे होता है? क्यों किया जाता है? हम क्लास में किसको अपना नेता चुन रहे हैं? इसपर पहले बातचीत की और दो बच्चों को चुनाव के उम्मीदवार बनाकर घोषणा की गई। नामों की चिट और मतपेटी बनाई गई एवं घोषणा-पत्र बनवाकर चर्चा करवाई गई। इस पूरी प्रक्रिया में बच्चे इस प्रकार मगन हो गए थे कि कोई भी लंच ब्रेक में नहीं जाना चाह रहा था। वे चुनाव की पूरी प्रक्रिया को करके समझना चाह रहे थे। मैंने उन्हें बताया कि ये एक वार्ड का चुनाव हो सकता है, अलग-अलग क्लास

मॉनिटर मिलकर एक स्कूल अध्यक्ष को चुनते हैं, उसी प्रकार हम मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री को चुनते हैं जो बहुमत दल का नेता होता है। बच्चों ने बड़े मज़े से पूरी प्रक्रिया को समझा। एक बच्चे ने कहा कि हम सबको खेल का एक मैदान चाहिए। फिर इसपर काफ़ी देर तक चर्चा हुई कि मॉनिटर खेल का मैदान पहले क्यों नहीं बनवा सकता है। मैंने जोड़ा कि खेल के मैदान से ज़्यादा और कुछ भी ज़रूरी हो सकता है न। मैंने कहा कि चलो, ज़रूरी कार्यों की सूची बनाई जाए। उसमें क्या-क्या हो सकता है। बच्चों के बताए अनुसार, पीने का पानी, टेबल-कुर्सी, शौचालय, पक्की सड़क, मैडम रोज़ स्कूल में पढ़ाने आएँ और खाना अच्छा मिले, इन सबको लिखा गया। फिर चर्चा हुई। इसमें से इस साल दो काम ही हो पाएँगे तो प्राथमिकता किस काम को मिलनी चाहिए। सब बच्चों (40) में से 32 ने कहा कि पीने का पानी और शौचालय होना चाहिए। इस प्रकार, बच्चों ने सरकार के कार्यों का एजेंडा और प्राथमिकता को समझा और फिर उस मद के लिए जुटाए जाने वाले बजट और जनता के पैसों को समझा।

आज शिक्षिका ख़ुश नज़र आईं और उन्होंने कहा कि कम-से-कम बच्चे चुनाव प्रक्रिया को समझ तो गए। मैंने कहा कि अब कोई भी बात करना आसान हो जाएगा।

चौथे दिन तक बच्चे मुझसे ख़ूब हिल मिल गए थे। कक्षा में जाते ही बच्चों ने कहा कि आप सरकार की कोई कहानी सुनाएँ। मैंने पूछा कि सरकार को आप लोग अच्छे-से समझ गए हैं क्या? हाँ, सब बच्चों ने एक साथ जवाब दिया। मैंने सोचा कि आज बच्चों को विचार करने के लिए क्यों न कुछ प्रश्न दिए जाएँ। मैंने पूछा कि हमारे देश में राजतंत्र है या लोकतंत्र? कक्षा में सन्नाटा छा गया क्योंकि ये शब्दावली सुनी तो थी किन्तु इसके अर्थ और इसके उपयोग को वह समझ नहीं पा रहे थे। जब मैंने शब्दों को खोलने का प्रयास किया तब बच्चों को थोड़ा समझ में आया। दुनिया के नक़्शे के मार्फ़त राजतंत्र और लोकतंत्र की कहानी सुनाई और हमारे देश में लोकतंत्र कैसे स्थापित हुआ, उसको बताया। आज़ादी के पहले भारत में किस प्रकार की शासन व्यवस्था थी? उसमें जनता का कितना अधिकार होता था? यह बताया गया। आज़ादी के बाद जब भारत में लोकतंत्र आया तो उसमें 'हम भारत के लोग' का उल्लेख किया गया। बच्चे इन कहानियों से राजतंत्र और लोकतंत्र शब्दावली को कुछ हद तक समझे होंगे। मैंने आगे बताया कि लोकतंत्र की पहचान है कि सब लोग सीधे मतदान करते हैं और जनता के प्रतिनिधि मिलकर सरकार बनाते हैं। इस बीच ही एक बच्चे ने सवाल किया कि लोगों का शासन है तो फिर हमारे इलाक़े में पुलिस का शासन क्यों है?

इस बात को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा कि पुलिस की व्यवस्था जनता के शासन के विरुद्ध नहीं है और न ही यह जनता के शासन के समानान्तर कोई अलग व्यवस्था है, बल्कि यह हमारे लिए ही एक ज़रूरी व्यवस्था है। यह जनता के शासन का हिस्सा है। पुलिस का काम सभी लोगों से नियम और क़ानून का सही रूप से पालन कराना है। इसलिए हमें अपने दैनिक जीवन में आसपास पुलिस दिखाई देती है, वह क़ानून और संविधान के हिसाब से ही काम करती है। हमें अपने संविधान और क़ानून पर भरोसा रखना चाहिए। व्यक्ति के रूप में कोई एक या दो पुलिस वाले उसी प्रकार ग़लत हो सकते हैं, जैसे कोई भी व्यक्ति ग़लत हो सकता है। लेकिन क़ानून और संविधान इन सबसे ऊपर हैं और वह जनता के अधिकार के लिए ही काम करते हैं।

बच्चे ने एक लम्बा-सा वाक़या बताया कि पुलिस किस प्रकार से हमारे इलाक़े में हम लोगों को डराती-धमकाती है। इसके लिए हम क्या कर सकते हैं? बच्चे ने सवाल किया कि पुलिस तो सबसे बड़ी होती है न? मैंने बताया कि पुलिस भी हमारी सुरक्षा-व्यवस्था के लिए है। लेकिन पुलिस के विरुद्ध भी हम अपने यहाँ के जन प्रतिनिधि– पार्षद और मंत्री– या पुलिस के बड़े अधिकारी को शिकायत कर सकते हैं। मेरे इस उत्तर से बच्चा बहुत सन्तुष्ट नहीं हुआ। मैं समझ सकती हूँ कि व्यावहारिक स्थिति एकदम

अलग है। गली मोहल्लों में पुलिस का दबदबा होता है। नेता तो उन्हें चुनाव के दौरान ही दिखाई देते हैं। नेताओं तक पहुँच भी सबके लिए आसान नहीं होती है। पुलिस की शिकायत भी कहीं हो सकती है यह बात तो उनके अनुभव में अभी कहीं नहीं है। उनको इसकी कहीं सम्भावना भी नहीं दिखाई देती है।

मैंने बात में जोड़ा कि पुलिस का भी एक पूरा ढाँचा होता है, जैसे जनता की सरकार का ढाँचा है, जैसे हमारे स्कूल का एक ढाँचा है, जिस प्रकार आपके स्कूल में प्रिंसिपल हैं, हेड मास्टर हैं, क्लास टीचर हैं, बाक़ी अलग-अलग विषयों के टीचर हैं, आपकी क्लास के मॉनिटर हैं, ठीक उसी तरह से पुलिस में भी एक व्यवस्था होती है। जिस पुलिस को हम गली मोहल्लों में देखते हैं, वह पुलिस के ढाँचे की सबसे निचली कड़ी है। लेकिन पुलिस भी क़ानून से और संविधान से बँधी हुई है। उसे दबंगता की खुली छूट नहीं है। इसपर हमारा भरोसा होना चाहिए।

किसी कक्षा में बच्चे अपने अनुभवों से बहुत सारी बिखरी-बिखरी सी बातें कर सकते हैं। शिक्षक को उनकी बातों का सम्मान करते हुए, उन्हें सहेजते हुए वास्तविक स्थिति और अवधारणा के समीप लाना होता है, ताकि वे भी तार्किक रूप से इन बातों पर विचार कर सकें और अवधारणा को अपने सन्दर्भों में समझ सकें।

बहरहाल इस कक्षा में सरकार की धर्म-निरपेक्षता बताना मेरे लिए प्राथमिक था सो अब मैंने सरकार की धर्म-निरपेक्षता को कैलेंडर की सरकारी छुट्टियों से समझाने की कोशिश की। मैंने कहा कि सरकार का अपना धर्म नहीं होता है। उसका कोई त्योहार नहीं होता। वह सबकी सोचकर चलती है। सबका ध्यान रखा जाता है। कैलेंडर के आधार पर बच्चों ने छुट्टियों की लिस्ट बनाई, तब जाकर काम आसान हुआ। सरकार के धर्म-निरपेक्ष चरित्र की थोड़ी झलक तो मिली। मैंने पहले दिन के प्रश्न को पुनः दोहराया, तब सब बच्चों ने उसके जवाब में कहा कि सरकार हमारी सुविधा और देखभाल के लिए होती है। यदि वह ऐसा नहीं करती है तो हम उसको हटा सकते हैं। बच्चों के चेहरों पर एक सन्तोष का भाव दिखाई दे रहा था।

कुल मिलाकर चार दिन की स्कूल विज़िट में मैंने समझा कि बच्चे लिंग भेद, आर्थिक असमानता, विविधता, चुनाव, सरकार, बहुमत दल का नेता, राज्य सरकार, केन्द्र सरकार और अन्ततः राज्य की धर्म-निरपेक्षता की अवधारणाओं के अनुभवजन्य पक्षों से जूझे हैं और कुछ बहुत ही प्रारम्भिक समझ बन पाई है। अभी सामान्य और अमूर्त सिद्धान्तों तक जाना दूर तो था मगर असम्भव नहीं। इन अनुभवों पर विचार करते हुए एनसीएफ़ की बातें जीवन्त रूप में सामने आईं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के अन्तर्गत सामाजिक विज्ञान शिक्षण पर तैयार किया गया *राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र,* समाज को विभिन्न संरचनाओं, उसके शासन और रूपान्तरण को समझने के सम्बन्ध में बात करता है। साथ ही उसमें 'भारतीय संविधान' में स्थापित मूल्यों जैसे– न्याय, स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे एवं राष्ट्र की एकता और अखण्डता को समझने की बात कही गई है। उसमें कहा गया है कि बच्चे 'समाज के सक्रिय, ज़िम्मेदार और चिन्तनशील सदस्य बनें', और वे 'अलग-अलग मतों, जीवन शैलियों और सांस्कृतिक परम्पराओं के अन्तरों को सम्मान देना' व 'उन्हें प्राप्त हो रहे विचारों, संस्थाओं और व्यवहारों' पर 'सवाल उठाना और उसकी जाँच परख करना' सीखें। साथ ही वे 'सामाजिक एवं जीवन कौशलों के विकास' के कुछ काम करें और इस बात को समझें कि 'पारस्परिक सामाजिक क्रियाओं के लिए ये कौशल महत्त्वपूर्ण हैं'।

आधार-पत्र दो प्रमुख बातों की पैरवी करता है; एक तो संवैधानिक मूल्यों को समझना और दूसरा विचारों, संस्थाओं और व्यवहारों पर सवाल उठाना और उन्हें जाँचना परखना।

कक्षा-कक्ष में यह काम करते हुए मेरी स्पष्ट समझ बनी कि संवैधानिक मूल्यों और सत्ता-केन्द्रित व्यवहार को बताने के लिए अवधारणाओं को सिलसिलेवार ढंग से बताया और समझाया जाना ज़रूरी है। बच्चों के बीच एक अवधारणा पूरी तरह से विकसित होने से पहले दूसरी अवधारणा पर कूदकर नहीं जाना चाहिए। माध्यमिक स्तर के बच्चे जो वयस्क होने जा रहे हैं, वे अपने आसपास, घर, परिवार, मोहल्ला, स्कूल, शिक्षक, पुलिस, चुनाव, अपराध, घर में पुरुषों का व्यवहार, नेता, विरोध प्रदर्शन, लड़ाई झगड़े को देखते हैं और कक्षा-कक्ष में वह इन सबपर प्रश्न करना चाहते हैं और विस्तार से बात कर उसका समाधान भी चाहते हैं। इसलिए बड़े होते बच्चों की जिज्ञासा, ज़रूरत और जानने की ख़ुराक को देखते हुए प्रारम्भिक अवधारणा से और जीवन्त अनुभव से ही बातचीत शुरू की जानी चाहिए।

समाज के सदस्यों के जीवन चरित्रों और उनके रोज़मर्रा के जीवन अनुभवों से बचकर सामाजिक विज्ञान अपने लक्ष्यों को भला कैसे पा सकता है। अवधारणा और जीवन के बीच सेतु तो बनना ही चाहिए। जैसी कि सामाजिक विज्ञान की प्रकृति ही है कि वह समाज की जीवन्त घटना और व्यक्ति के उनसे जुड़ाव पर प्रकाश डालता है, जिससे कि व्यक्ति अपनी स्थिति, अपने अधिकार और सही ग़लत का विश्लेषण कर सके। साथ ही समाज के भीतर पारस्परिक सम्बन्धों और उसमें राज्य की भूमिका को देख सके।

सन्दर्भ

एनसीएफ़ 2005

सामाजिक विज्ञान शिक्षण पर राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार-पत्र (एनसीईआरटी)

सोशल पोलिटिकल लाइफ़, कक्षा 8 (एनसीईआरटी)

सामाजिक विज्ञान, कक्षा 7 (मध्यप्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र)

शिक्षा विमर्श (दिगंतर), जुलाई 2017 अंक

सामाजिक अध्ययन शिक्षण एक प्रयोग (एकलव्य), 1994

अंजना त्रिवेदी विगत ढाई दशकों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। शिक्षण-प्रशिक्षण के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं के लिए सतत लेखन रहा है। महिला स्वास्थ्य, शिक्षा एवं नागरिक अधिकार इनके प्रमुख विषय रहे हैं। अंजना वर्तमान में अजीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, मध्यप्रदेश, भोपाल में सामाजिक विज्ञान स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : anjana.trivedi@azimpremjifoundation.org